कबीर के काव्य की सामाजिक उपादेयता

अमित कुमार तिवारी

शोध छात्र
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

कबीर जिस मध्यकाल में हुए थे, उसमें बहुत से आंतरिक विखंडनों के बावजूद मुख्य रूप से दो ही जातियाँ थीं, जिनके बीच ऐतिहासिक और तात्कालिक कारणों से भयानक वैमनस्य और अपने पर अड़े रहने की ज़िद थी। विद्वेष को समाप्त करने के दो ही उपाय कबीर को दिख रहे थे–एक तो दोनों के बाह्याचारों की व्यर्थता बताना और दूसरा भीतर के अद्वैत का साक्षात्कार करना। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के बाह्याचारों का खंडन करते हुए कहते हैं–

ना जाने तेरा साहब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या तेरा साहिब बहिरा है।
चिउँटी के पग नेवर बाजे, सो भी साबह सुनता है।।
पंडित होय के आसन मारे, लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लगता है।।

कबीर सभी मनुष्यों के बीच मैत्री स्थापित करना चाहते थे। वे यह चाहते थे कि समाज में सभी मनुष्य मिल–जुल कर शांति और सद्भाव से रहें। डॉ0 बच्चन सिंह कबीर के बारे में लिखते हैं– उन्हें कोई भी मत स्वीकार नहीं जो मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करता है। उन्हें कोई भी अनुष्ठान या साधना मंजूर नहीं है, जो बुद्धि–विरूद्ध है। उन्हें कोई भी शास्त्र मान्य नहीं है जो आत्मज्ञान को कुंठित करता है। वेद–कितेब भ्रमोत्पादक है, अतः अस्वीकार्य है। तीर्थ, व्रत, नमाज, रोजा गुमराह करते हैं, इसलिए अग्राह्य हैं। पंडित–पांडे, काजी–मुल्ला उन धर्मों के ठेकेदार हैं जो धर्म नहीं है। अतः धृणास्पद है।'' कबीर मनुष्य को सिर्फ मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे, हिन्दू–मुसलमान, पंडित–मुल्ला के रूप में नहीं। उन्होंने हिन्दू–मुसलमान के बीच एकता लाने का प्रयास किया।

सिर्फ सामाजिक ऊँच–नीच पर ही कबीर ने आक्रमण नहीं किया बल्कि ईश्वर भक्ति के प्रपंचो को भी चुनौती देने का साहस दिखाया। उनसे पहले शायद ही किसी संत ने ईश्वर भक्ति पर इतने आक्रामक तरीके से कुछ कहा हो–

यह सब झूठी बंदगी विरथा पंच नवाज।

Scanned with CamScanner

सांचै मारि झूठि पढ़ि काजी करै अकाज।।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' में कबीर के व्यक्तित्व का बिल्कुल सही विश्लेषण करते हुए लिखा है– ''कबीरदास ऐसे ही मिलन–बिन्दू पर खड़े थे, जहाँ से एक ओर हिन्दुत्व निकल जाता है और दूसरी ओर मुसलमानत्व, जहाँ एक ओर ज्ञान निकल जाता है और दूसरी ओर अशिक्षा, जहाँ पर एक ओर योगमार्ग निकल जाता है दूसरी ओर भक्तिमार्ग, जहाँ एक तरफ निर्गुण भावना निकल जाती है, दूसरी ओर सगुण साधना। उसी प्रशस्त चौराहे पर वह खड़े थे। वह दोनों ओर देख सकते थे और परस्पर–विरूद्ध दिशा में गए हुए मार्गों के गुण–दोष उन्हें स्पष्ट दिखाई दे जाते थे।

कबीर सभी मनुष्यों के बीच मैत्री स्थापित करना चाहते थे। वे यह चाहते थे कि समाज में सभी मनुष्य मिल–जुल कर शांति और सद्भाव से रहें। डॉ0 बच्चन सिंह कबीर के बारे में लिखते हैं– उन्हें कोई भी मत स्वीकार नहीं जो मनुष्य–मनुष्य के बीच भेद उत्पन्न करता है। उन्हें कोई भी अनुष्ठान या साधना मंजूर नहीं है, जो बुद्धि–विरूद्ध है। उन्हें कोई भी शास्त्र मान्य नहीं है जो आत्मज्ञान को कुंठित करता है।

कबीर खड़ा बाजार में माँगे सबकी खैर
ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।

कबीर तो बीच बाजार खड़े होकर सबकी खैर मॉगते हैं मगर क्या आज हम बीच बाजार खड़े होकर सबकी खैर माँगते हैं या माँग सकते हैं? जाहिर है उत्तर नकारात्मक ही होगा। कबीर का समय हमारे आज के समय से ज्यादा उथल–पुथल भरा था। पंद्रहवी शताब्दी में भारत में इस्लाम और हिन्दू धर्म के बीच संघर्ष चल रहा था। उस समय के मुकाबले आज हम अधिक शांत और सद्भावपूर्ण माहौल में रह रहे है मगर फिर भी आज अपने और अपनों के अलावा कोई किसी की खैर न तो माँगना चाहता है और न ही मांगता है। आज से छह सौ साल पहले कबीर लोगों को जागत रहियो भाई' कह रहे थे मगर न तो तब लोगों ने उनकी बात मानी और न ही आज मान रहे हैं।

एक–दूसरे को मार रहे हैं। धर्म का मर्म न तो लोगों ने तब समझा था और न आज ही समझ रहे हैं। कबीर ने जिस जाति–पाति का विरोध आज से छ सौ साल पहले किया था, वह आज और भी कठोर रूप में हमारे सामने आ रहा है। अपने बागी धर्म के निर्वाह के लिए कबीर इनकार की पराकाष्ठा तक पहुँच गए थे। उन्होंने खुद को किसी भी धर्म में शामिल न करते हुए घोषणा की– 'ना मैं हिन्दू ना मुसलमाना'। कबीर ने साधना के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया। वे सारे कर्म–विधान जिसके मूल में कोई तत्व नहीं है, कबीर के लिए व्यर्थ हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि शरीर का योग तो सब साधते है।, मन का योग तो कोई बिरला ही साधता है–

तन को जोगी सब करे, मन का बिरला कोई।
सब विधि सहजै पाइये, जे मन जोगी होई।।

Scanned with CamScanner

कबीर एकेश्वरवाद के समर्थक थे। उनका यह विचार था कि एक ही परमतत्व को राम और रहीम कह देने से दो नहीं हो जाएगा। माला और तसवीह पर जप करने से वह चीज दो नहीं हो जाएगा–

अरे भाई दोइ कहाँ से मोही बतावो।
बिचिहि उपाइ रेची द्वै धरनी, दीन एक बीच भई करनी।
राम–रहीम जपत सुधि गई, उनी माला तसबी लई।
कहै कबीर चेत रे भोंदू, बोल निहारा तुरूक न हिन्दू।।

तैतीस करोड़ देवी–देवताओं के अवतार वाले इस देश में उन्होंने सारे अवतारवाद और देवी–देवताओं का निषेध करते हुए ईश्वर–अल्लाह–ब्रह्म, राम–रहीम को एक माना। यह एकेश्वरवाद ही उन्हें मंदिर–मस्जिद, काबा–काशी, तीर्थ–व्रत–रोजा–उपवास–नमाज–बंदगी सबसे अलग घट–घट में, पिंड–पिंड में और दुनिया जहान में देखने और पाने का विश्वास देता है। इसी के चलते कबीर धर्म के मर्म को समझ पाए जो सेवा, पर–उपकार, पर–दुखकातरता, सदाचरण, सच्चाई, निर्मल अंतःकरण, ईमानदारी के साथ जीने के अलावा और कुछ नहीं है। धर्म के इस मर्म का जानकार ही कबीर अपने समय के सबसे 'सेक्यूलर' व्यक्ति उभर कर सामने आते हैं। उनका विचार है कि एक ही ज्योति सबमें व्याप्त है, दूसरा कोई तत्व नहीं–

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे अपना, चले हमारे साथ।।
कबीर में जो फक्कड़ता, अक्खड़ता और मस्ती थी वह उन्हें अपना घर जला देने के बाद ही मिली थी। मगर आज लोगों में घर जोड़ने की माया इतनी प्रबल हो गयी है कि उन्हें अपने स्वार्थ के अलावा और कुछ सूझ ही नहीं रहा।

एकहिं ज्योति सकल घट व्यापक दूजा तत्त न होई।
कहै कबीर सुनौ रे संतो भटकि मरै जनि कोई।।

कबीर ने अपने समय की परिस्थियों को गहराई से परखा था और यह पाया कि सभी धर्म ईश्वर के विविध नामों में ही उलझे हुए हैं। उनका यह विचार था कि हमें अलग–अलग नामों के फेर में न पड़कर उस अद्वितीय परमतत्व को स्वीकार करना चाहिए जो सबके मूल में स्थित सत्य स्वरूप है। राम–रहीम–करीम, अल्लाह, खुदा व गोरख जैसे नामों के आधार पर व्यक्ति विशेष के रूप में समझ मूलतः वही एक सत्य है जो सर्वत्र व्याप्त है, जिसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है–

जोगी गोरख–गोरख करै, हिन्दू राम नाम उच्चारै।
मुसलमान कहै एक खुदाई, कबीर का स्वामी घटि–घटि रह्यो समाई।।

कबीर का यह मत था कि उस परम तत्व की भक्ति में सबसे बड़ा रोड़ा धार्मिक बाह्चार ही है। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों में धर्म के नाम पर प्रचलित धार्मिक आडंबरों का कड़े से कड़े शब्दों में खंडन किया। उन्होंने हिन्दूओं के वेदपाठ, तीर्थस्थान, व्रतोद्यापन,

Scanned with CamScanner

छूआ–छूत, अवतारवाद, कर्मकांड आदि सबका विरोध किया। वर्णाश्रम व्यवस्था के नाम पर उस समय हिन्दू समाज में प्रचलित छूआ–छूत और जातियों की अस्पृश्यता को कबीर ने कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने हमेशा यही कहा कि हम सब उस एक परमतत्व से उत्पन्न हुए हैं और उसने हममें कोई भेदभाव नहीं किया है। ब्राह्मण और शूद्र का भेद तो कबीर मानते ही नहीं थे। वे प्रश्न करते हैं–

हमारे कैसे लोहु तुम्हारे कैसे दूध
तुम्ह कैसे ब्राह्मण हम कैसे सूद।

ईश्वर के वास्तविक रहस्य को न समझकर ही लोग नाम के फेर में पड़े रहते हैं और मूल तत्व को जान ही नहीं पाते। एकेश्वरवाद की बात करते हुए भी कबीर ऐसे धर्म को स्वीकार नहीं करते जो दुनिया के सारे कर्म को त्यागकर निवृत्ति की ओर ले जाए। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–

हाँथ–पाँव कर काम सक चित्त निरंजन नालि।

कबीर किसी धर्मोपदेशक की तरह सिर्फ ज्ञान ही नहीं बांचते थे बल्कि कर्मरत रहते हुए ईश्वर की भक्ति करते थे। कबीर स्वयं जुलाहे का काम करते थे। व्यवसाय के माध्यम से कबीर ने छोटे–बड़े का भेद दूर करने का प्रयत्न किया। संभवत यह पहली बार था कि एक भक्त और महात्मा ने अपने साधारण धंधे का त्याग किए बिना गौरव प्राप्त किया। इस तथ्य से कबीर की इस निष्ठा का बोध होता है कि मानव–मानव के बीच भेद पैदा करने में केवल वर्ण, जाति और धर्म की बाधक नहीं है बल्कि व्यवसाय के आधार पर भी समाज में ऊँच–नीच का भेद किया जाता है। कबीर ने इस भेद को भी चुनौती दी और अपना काम करते हुए ईश्वर की भक्ति की। कबीर बड़े गर्व से कहते हैं–

जाति जुलाहा मति को धीर, हरषि–हरषि गुण रमै कबीर।
मेरे राम की अभै पद नगरी, कहै कबीर जुलाहा।
तू बामन मैं कासी का जुलाहा।।

कबीर सिर्फ बातों के शेर नहीं थे। उन्होंने जनता को केवल उपदेश नहीं दिए बल्कि अपनी कही एक–एक बात को खुद अपने जीवन में आचरित भी किया। रूढ़ियों और रीतियों पर प्रहार करना तो सरल है, मगर स्वयं उन बातों पर चलना सरल नहीं। कबीर इसलिए एक मिसाल हैं कि उन्होंने पहले अपना घर फूँका, फिर दूसरों से अपना घर फूँककर अपने साथ चलने को कहा–

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर जारे अपना, चले हमारे साथ।।

कबीर में जो फक्कड़ता, अक्खड़ता और मस्ती थी वह उन्हें अपना घर जला देने के बाद ही मिली थी। मगर आज लोगों में घर जोड़ने की माया इतनी प्रबल हो गयी है कि उन्हें अपने स्वार्थ के अलावा और कुछ सूझ ही नहीं रहा। कबीर के समाज–दर्शन पर विचार करते हुए रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं– ''कबीर का यदि कोई समाज–दर्शन है तो वह मनुष्य

Scanned with CamScanner

के बाह्य जीवन को नैतिक आचरण की मर्यादा में बांधने वाला, मानव–धर्म की ऊँचाई पर पहुँचने वाला है। कबीर का लक्ष्य व्यक्ति ही है। उन्होंने व्यक्ति को ही आध्यात्म चेतना से मंडित करना चाहा था।'' वास्तव में कबीर का आध्यात्म मनुष्य को सभी बाह्य आंडबरों से हटा कर एक ईश्वर पर केन्द्रित करता है।

कबीर अकेले की मुक्ति नहीं चाहते हैं, वे तो सारे जगत की मुक्ति चाहते हैं। तभी तो वे सबकी कहते हैं– 'मैं तो सबहीं की कहौ।' इसलिए कबीर का धर्म अनायास ही समाज–सुधार और मनुष्यता का प्रतिमान बन जाता है। कबीर ने जाति–पाति, छुआ–छूत, ऊँच–नीच और ब्राह्मण–शूद्र के भेद को सिरे से नकार दिया। इसलिए कबीर को समाज–सुधारक कहा जाता है। निस्संदेह इन सभी भेद–भावों के दूर होने से सुंदर समाज का निर्माण हो सकता है। ऐसा समाज जिसमें ब्राह्मण–शूद्र में कोई भेद न हो, जाति–पाति का भेद न हो और हर मनुष्य समान समझा जाए, मगर ऐसे समाज की रचना आज तक नहीं हो पाई है। कबीर कोई समाज–सुधारक नहीं थे। कबीर का मुख्य लक्ष्य मानव मात्र में समता और एकता स्थापित करना था। कबीर न तो किसी समाज–सुधारक की भाँति कोई उपदेश देने आए थे और न ही किसी सभा को स्थापित करना ही उनका उद्देश्य था। डॉ0 बच्चन सिंह ने भी उन्हें समाज सुधारक मानने से इनकार किया है। कबीर का लक्ष्य मानव–मात्र में समता औ एकता स्थापित करना था। वास्तव में कबीर मूल रूप से एक भक्त थे। वे ईश्वर भक्ति के साथ अपना जीवन शांति के साथ व्यतीत करना चाहते थे, मगर जब उन्होंने अपने आस–पास धर्म के नाम पर मनुष्य–मनुष्य के बीच भेदों की खाई देखी, छल–कपट का व्यवहार देखा, वर्ग–भेद के कारण दुख–दैन्य का प्रसार देखा, तो वे अपने सुख को छोड़कर इस भेद–भाव को मिटाने में जुट गए।

कबीर की चेतना मूलतः आध्यात्मिक थी। उन्होंने साधना के सभी क्षेत्रों में बाह्याचार का विरोध किया है। वे सारे औपचारिक कर्मकाण्ड जिनके मूल में कोई तत्व नहीं है, कबीर के लिए व्यर्थ है। जिन नाथपंथियों से कबीर को जोड़ा जाता है, उनके आडंबरों का भी कबीर ने विरोध किया है। वे यह स्पष्ट देख रहे थे कि सभी धर्मो के लोग बाह्याडंबरों में ही फंसे हुए हैं, उनके मूल तत्व को नहीं जान रहे है। कबीर कहते हैं कि लोग जप–तप, रोजा–नमाज को ही धर्म मानते हैं। मगर वे यह प्रश्न करते हैं कि अगर मन ही साफ नहीं है तो 'अजू करने से क्या लाभ? नमाज करना या हज और काबा जाना तभी सार्थक है जब दिल में मैल न हो–

क्या अजू जप मंजन किए, क्या मसीति सिरू नांए।
दिल महि कपट निवाज गुजारै क्या हज कावै जाए।।

कबीर ज्ञान के सहारे ही मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, तिलक, माला, कंठी जैसे बाह्याचारों का खंडन करते हैं। वे पुस्तक में लिखी बातों को भी निरर्थक मानते हैं। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान और उसको अर्जित करने वाले पंडितों की जड़ता का अत्यंत निर्ममता से उपहास उड़ाया है। वे पुस्तकीय ज्ञान को भ्रम में डालने वाला ज्ञान मानते थे। इन्हीं पुस्तकों के

Scanned with CamScanner

सहारे पंडितों ने जनता में अंधविश्वास फैलाकर उनका शोषण किया है। इसलिए कबीर इस प्रकार के पंडितों की निंदा तो करते हैं ही साथ ही साथ ज्ञान संबंधी अपनी मान्यता भी स्पष्ट करते हैं। कबीर स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि पढ़ने के फेर में मत पड़ो। पुस्तकें सहज बात को सहज तरीके से न कहकर और भी उलझा देती हैं–

मेरा तेरा मनुआ कैसे इक होई रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यो अरूझाई रे।।

कबीर के लिए ज्ञान ऐसा औजार था जिसकी सहायता से वह धर्म और मत–मतांतर के खंडन, प्रतिपादन में अपनी रक्षा और विरोधियों को पराजित करते थे। मोती सिंह ने उनके इस ज्ञानमार्ग पर लिखा है– ''उनका (कबीर) का रास्ता श्रद्धा और स्वीकृति का नहीं है, वरन् स्वानुभूति और स्वतंत्र चेतना का है। ज्ञान को वह स्वानुभूति के समकक्ष समझते थे। उनके लिए पुस्तकों में लिखे विचारों की जानकारी ज्ञान नहीं थी।'' कबीर के समाज–सुधार और विद्रोही चेतना के केन्द्र में आध्यात्म है। कबीर जिस 'ज्ञान की आँधी' की बात कहते हैं उसे कोई भी ऐहिक दर्शन और तर्क नहीं समझ सकता। वह एक संत का आध्यात्म है। जिसकी परिणति आँधी के बाद बरसने वाला पानी है–

आँधी पाछे जो जल बरसै
तिहि तेरा जन भीना।

यह आँधी और इसके बाद होने वाली बारिश मिलकर ही उस ज्ञान को सार्थक करते हैं जिससे मन और लोक से सारे अंधेरे छँट जाते हैं। कबीर इस ज्ञान की आँधी के बाद प्रेम की बारिश चाहते हैं– यानी राग का विस्तार और उदात्तीकरण। मगर इसके साथ ही कबीर उस पांडित्य को भी व्यर्थ मानते हैं जो सिर्फ ज्ञान का बोझ ढोना सिखाता है जो मनुष्य को जड़ बना देता है और जो मनुष्य को परमेश्वर के प्रेम से वंचित कर देता है–

पढ़ि–पढ़ि के पत्थर भया, लिखि–लिखि भया जूँ ईट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एको छींट।।
पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।।

कबीर का यह मानना था कि उस परम तत्व को प्रेम से ही पाया जा सकता है। समस्त बाह्याचारों की पहुँच से ऊपर है। कबीर ने सभी बाह्याडंबरों को अस्वीकार करके सिर्फ प्रेम को ही स्वीकार किया। प्रेम मनुष्य को मनुष्य से तो मिलाता है ही वह ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम भी है। वे प्रेम आधारित समाज का निर्माण करना चाहते थे। मगर न तो लोग तब ही उनकी बातों को माने और न अब ही उनकी बातों को समझ रहे हैं। कबीर ऐसा समाज निर्मित करना चाहते थे जो आपसी प्रेम, भाईचारे और सद्भाव पर आधारित हो। जिसमें जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण की कोई दीवार न हो। मगर हम देखते हैं कि आज भी वही

Scanned with CamScanner

कठमुल्लापन, पाखंड, बाह्याचार, मंदिर–मस्जिद के झगड़े, मनुष्य के श्रम की अवमानना समाज में फैली हुई है। अगर कबीर आज हमारे समय में होते तो निश्चित ही कर रहे होते–

जुगन–जुगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।

कबीर का यह विश्वास था कि सभी मनुष्य एक ही मूल से उत्पन्न हुए हैं। उनका कहना था कि जब सभी मनुष्य एक ही ज्योति से उत्पन्न हुए हैं, तब ब्राह्मण और शूद्र का वर्गीकरण कहाँ तक न्यासंगत है? धर्म का मर्म न समझना और मिथ्या को सच का दर्जा देना उस युग की विशेषता थी–

हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुरूक कहे रहिमाना।
आपस में दोउ लड़ी–लड़ी मुए मरम न काहू जाना।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, डॉ0 बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण–2009, पृ0 88
2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन, तीसरा संस्करण– 1976, पृ0 189
3. तिवारी, डॉ0 रामचन्द्र, कबीर मीमांसा, लोकभारती प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1976, पृ0 134
4. सिंह, डॉ0 बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्णप्रकाशन, संस्करण 2009, पृ0 84
5. स्नातक, विजयेन्द्र (संपा.) कबीर, राधाकृष्ण प्रकाशन, आठवां संस्करण, पृ0 138

Scanned with CamScanner